RASHTRIYA SWATANTRATA AANDOLAN ME AZAD HIND FAUJ KI BHUMIKA

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में आजाद हिन्द फौज की भूमिका

Dr. Subhash Kumar

शिक्षक, राज राजेश्वरी उच्च माध्यमिक विद्यालय, सूर्यपूरा, रोहतास, बिहार–802221

ABSTRACT

आजाद हिन्द फौज के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इस फौज में न केवल अलग–अलग सम्प्रदाय के सेनानी शामिल थे, बल्कि इसमें महिलाओं का रेजिमेंट भी था। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि आजाद हिन्द फौज (इण्डियन नेशनल आर्मी) का गठन कैप्टन मोहन सिंह, रासबिहारी बोस एवं निरंजन सिंह गिल ने मिलकर 1942 में किया था जिसे बाद में नेताजी ने पुनर्गठित किया और इसमें नई शक्ति का संचार किया। कई इतिहासकार और तथ्य यह साबित करते हैं कि सुभाष चन्द्र असल मायनों में हीरो थे। उनकी गतिविधियों ने ना सिर्फ अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए बल्कि उन्होंने देश को आजाद कराने के लिए अपनी एक अलग फौज भी खड़ी की थी जिसे नाम दिया आजाद हिन्द फौज। अंग्रेजों ने उन्हें देश से तो निकालने पर विवश कर दिया लेकिन अपने देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने विदेश में जाकर भी ऐसी सेना तैयार की जिसने आगे जाकर अंग्रेजों को दिन में ही तारे दिखाने का हौसला दिखाया। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का मानना था कि भारत में अंग्रेजी हुकूमत को खत्म करने के लिए सशस्त्र विद्रोही ही एक मात्र रास्ता हो सकता है। अपनी विचारधारा पर वह जीवनपर्यंत चलते रहे और उन्होंने एक ऐसी फौज खड़ी की जो दुनिया में किसी भी सेना को टक्कर देने की हिम्मत रखती थी। सुभाषचन्द्र बोस ने हमेशा पूर्ण स्वतंत्रता और इसके लिए क्रांतिकारी रास्ते ही सुझाए, उन्होंने ही ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा'' और ''दिल्ली चलो'' जैसे नारों से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नई जान फूँकी थी।

शब्द संकेत : स्वतंत्रता संग्राम, आजाद हिन्द फौज, सुभाष चन्द्र बोस, आजादी एवं सशस्त्र विद्रोह।

विषय प्रवेश :

सुभाषचन्द्र ने सशस्त्र क्रान्ति द्वारा भारत को स्वतंत्र कराने के उद्देश्य से 21 अक्टूबर, 1943 को आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की तथा 'आजाद हिन्द फौज' का गठन किया। इस संगठन के प्रतीक चिह्न एक झंडे पर दहाड़ते हुए बाघ का चित्र बना होता था। कदम–कदम बढ़ाए जा, खुशी के गीत गाए जा – इस संगठन का वह गीत था, जिसे गुनगुना कर संगठन के सेनानी जोश और उत्साह से भर उठते थे।

आजाद हिन्द फौज के कारण भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई। इस फौज में न केवल अलग–अलग सम्प्रदाय के सेनानी शामिल थे, बल्कि इसमें महिलाओं का रेजिमेंट भी था। यहाँ यह जानना आवश्यक है कि आजाद हिन्द फौज (इण्डियन नेशनल आर्मी) का गठन कैप्टन मोहन सिंह, रासबिहारी बोस एवं निरंजन सिंह गिल ने मिलकर 1942 में किया था जिसे बाद में नेताजी ने पुनर्गठित किया और इसमें नई शक्ति का संचार किया।

कई इतिहासकार और तथ्य यह साबित करते हैं कि सुभाष चन्द्र असल मायनों में हीरो थे। उनकी गतिविधियों ने ना सिर्फ अंग्रेजों के दाँत खट्टे कर दिए बल्कि उन्होंने देश को आजाद कराने के लिए अपनी एक अलग फौज भी खड़ी की थी जिसे नाम दिया आजाद हिन्द फौज। अंग्रेजों ने उन्हें देश से तो निकालने पर विवश कर दिया लेकिन अपने देश की स्वतंत्रता के लिए उन्होंने विदेश में जाकर भी ऐसी सेना तैयार की जिसने आगे जाकर अंग्रेजों को दिन में ही तारे दिखाने का हौसला दिखाया।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का मानना था कि भारत में अंग्रेजी हुकूमत को खत्म करने के लिए सशस्त्र विद्रोही ही एक मात्र रास्ता हो सकता है। अपनी विचारधारा पर वह जीवनपर्यंत चलते रहे और उन्होंने एक ऐसी फौज खड़ी की जो दुनिया में किसी भी सेना को टक्कर देने की हिम्मत रखती थी। सुभाषचन्द्र बोस ने हमेशा पूर्ण स्वतंत्रता और इसके लिए क्रांतिकारी रास्ते ही सुझाए, उन्होंने ही ''तुम मुझे खून दो, मैं तुम्हें आजादी दूँगा'' और ''दिल्ली चलो'' जैसे नारों से भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में नई जान फूँकी थी।

तेईस वर्ष की आयु में निस्संदेह सुभाष तूफानी राजनीति में आ गए, परंतु उनकी अंतरात्मा में अध्ययन के प्रति लगन कभी कम नहीं हुई। उनको भगवद्गीता के अध्ययन से शांति और शक्ति प्राप्त होती थी। इसे वे प्रत्येक रात्रि में सोने से पहले पढ़ते थे और दिन में प्रत्येक क्षण गीता की शिक्षा के अनुसार कार्य करने का प्रयास करते थे। यद्यपि राजनीति के कारण वे सदैव जन–समूह के बीच ही रहे थे परंतु उनकी आत्मा एकांत में ईश्वर के ध्यान में मग्न रहने की अभिलाषी रहती थी। जनता के मंच पर वे लंबा भाषण देते थे परंतु मंच से पृथक होते ही वे शीघ्र एकांत चाहते थे और किसी से बातचीत करना पसंद नहीं करते थे। पूर्वी एशिया में वे यदि भोजन के पश्चात् खुले में विश्राम करते और उसके पास उनका बुलाया हुआ कोई व्यक्ति उनके कहने पर आकर बैठ जाता तो भी वे पूरे घंटे में कुछ ही शब्द बोलते थे। वे मनन के लिए किसी के सान्निध्य की अपेक्षा शांति अधिक चाहते थे। शांति के वे ही क्षण ऐसे होते थे जिनमें वे अपनी आत्मिक शक्ति को बलवती करके सांसारिक समस्याओं से जूझने के लिए शक्ति प्राप्त करते थे। बाहरी दुनिया के लिए वे एक राजनीतिक नेता थे किंतु कर्मयोग ने उन्हें ईश्वर में विश्वास रखकर निष्काम कर्म की शिक्षा दी थी।

उनके गांधीजी के साथ राजनीतिक मतभेद बहुत अधिक थे और इस संबंध में वे उनसे एकमत नहीं हो सकते थे परंतु जहां तक महात्माजी के सम्मान का प्रश्न है वे इस विषय में किसी से पीछे नहीं थे। जब वे रंगून रेडियो से बोले तो उन्होंने गांधीजी के प्रति अपनी श्रद्धा व्यक्त करने में भूल नहीं की और उन्हें 'राष्ट्रपिता' कहकर संबोधित करते हुए आशीर्वाद की प्रार्थना की। जब युद्ध धुरी शक्तियों की पराजय के साथ समाप्त हुआ तो गांधीजी ने मित्र राष्ट्रों को विजयगर्व से उन्मत्त न होने की चेतावनी दी। सुभाष ने अपनी सरकार के साथियों से आत्मीय बातचीत करते हुए कहा, ''भारतवर्ष में गांधी के अतिरिक्त अन्य कोई व्यक्ति ऐसा नहीं है जो अंग्रेजो को विजय के दूसरे दिन ही ऐसा कहने का साहस कर सके।''

यदि उन्हें गांधीजी का विरोध करना होता तो वे बहुत खेद के साथ एवं दुःखी मन से ऐसा करते थे। वे अपने विचारों पर दृढ़ रहते थे और उनमें उनका अटूट विश्वास था। यदि इसके लिए उन्हें कुछ त्याग भी करना

पड़े तो उसके लिए भी वे तैयार रहते थे। उन्होंने अपने विश्वासों का मूल्य चुकाया और बिना विचलित हुए कांग्रेस के अध्यक्ष पद से त्याग–पत्र दे दिया। तत्पश्चात् तीन वर्ष तक किसी पद पर निर्वाचन हेतु प्रार्थी न होने का दंड भी सहन किया।

उन्हेंने अपनी आदतों में राजाध्यक्ष, अस्थायी सरकार का प्रधानमंत्री और आज़ाद हिंद फौज का सर्वोच्च कमांडर होने पर भी कोई परिवर्तन नहीं किया। उनकी जीवन–यापन की आदतें पराकाष्ठाकी सीमा तक साधारण थीं। वे स्वयं उसी राशन का भोजन करते थे जो सैनिकों को दिया जाता था। सैनिक भी यह जानते थे कि वे वही भोजन कर रहे थे जो उनके कमांडर खाते थे। उनके भोजन में तभी परिवर्तन होता था जब उन्हें किसी उच्च श्रेणी के अभ्यागत का सम्मान करना होता था।

उनका विश्वास था कि भारत से अंग्रेजी शासन अस्त्र–शस्त्रों के प्रयोग से ही हटाया जा सकता था और सशस्त्र शक्ति का संगठन भारत से बाहर ही हो सकता था। इसलिए उन्होंने स्वयं 1941 में व्यक्तिगत संकट एवं अनेक कष्ट सहते हुए देश–निर्वासन लिया और अंग्रेजों के इस आक्षेप को भी जानबूझ कर सहन किया कि वे धुरी शक्तियों के हाथ की 'कठपुतली' थे। देशभक्तों में उच्च कोटि का देशभक्त होते हुए भी उन्हें शत्रु के युद्धकालीन प्रचार में 'संतरी' कहा गया। वे इस प्रकार से तनिक भी विचलित नहीं हुए क्योंकि वे अपने विचारों में इतने दृढ़ थे कि अपशब्द एवं अपमान भी उन्हें अस्थिर नहीं कर सकते थे। वे जानते थे कि उन्हें किस वस्तु की आवश्यकता थी। उसे प्राप्त करने के लिए उन्होंने दृढ़ निश्चय किया था। वह थी देश को स्वतंत्र करने हेतु भारत से बाहर से सशस्त्र सहायता।

नेताजी ने राष्ट्र की स्वतंत्रता के संघर्ष में अपने योगदान की कभी अतिशयोक्ति नहीं की। स्वतंत्रता संघर्ष उनके जन्म के 150 वर्ष पूर्व आरंभ हुआ था और अगस्त 1945 तक, जब वे सैगोन में अपनी अंतिम ज्ञात यात्रा के लिए बोंबर वायुयान में सवार हुए, समाप्त नहीं हुआ था। अतः अपने जन्म से पूर्व डेढ़ शताब्दी के समय में उत्पन्न उन क्रांतिकारियों के बलिदान का कथन करते हुए वे नहीं थकते थे जो फांसी के तख्ते पर झूल गए थे। वे बार–बार आज़ाद हिन्द फ़ौज और पूर्वी एशिया में भारतीय नागरिकों का स्मरण दिलाते थे कि 1918 से 1942 में 'भारत छोड़ो' अंतिम आंदोलन तक भारत में गांधीजी के नेतृत्व में विदेशियों से प्रत्येक दशा में असमान निशस्त्र भारतवासी उनसे लड़ते रहे थे। नेताजी आज़ाद हिन्द फ़ौज और पूर्वी एशिया में भारतीयों से बार–बार स्पष्ट कहते थे–''स्मरण रखो कि हमने भारत में उन निशस्त्र पुरुषों, स्त्रियों ओर बच्चों की सहायता के लिए जो अंग्रेजी की संगीनों का सामना कर रहे हैं यह द्वितीय मोर्चा खोला है। तुम भाग्यशाली हो कि तुम उन संगीनों से दूर हो। तुम्हारे पास अपनी संगीने हैं जिनसे तुम युद्धभूमि में लड़ सकते हो। यदि तुम सब तीस लाख भारतीय अपना सर्वस्व यहां तक कि अपना जीवन भी अड़तीस करोड़ देशवासियों को मुक्ति के लिए दे दो तो वह भी कम है। तुम्हारे जीवन में यह स्वर्णिम अवसर है। इसे न जाने दो। भविष्य में आने वाली पीढ़ियां यह न कहें कि तुम अपनी मातृभूमि के इतिहास में इस कठिन समय पर कान न आए।'' जो भी कुछ हो सुभाषचंद्र बोस भारत की स्वतंत्रता के संघर्ष में एक समर्पित सैनिक थे और उनके अपने भावी लक्ष्य में अडिग विश्वास था। उन्हें भारत के भविष्य के बारे में भी अडिग विश्वास था–''भारत स्वतंत्र होगा और और बहुत शीघ्र स्वतंत्र होगा।''

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा :

प्रस्तुत शोध आलेख के लिए कुछ संदर्भित ग्रन्थों का पूर्वावलोकन किया गया है जिसका सारांश समीक्षा की तरह यहां प्रस्तुत किया जा रहा है–

वेंकटेशन, जी0 (2006) द्वारा लिखित पुस्तक में यह उद्धृत किया गया है कि आम जनता की राय को संगठनों के समक्ष प्रस्तुत करने के लिए उन्हें स्वतंत्रता प्रदान की गई और उनकी राय को प्रमुखता से किसी भी संगठनों के विचार मंच पर प्रस्तुत करने की स्वीकृति प्रदान की गई।

चन्द्रा, बिपिन एवं अन्य (2007) द्वारा लिखित पुस्तक में यह उद्धृत किया गया है कि ब्रिटिशकालीन भारत में सबसे प्रमुख समाज सुधारक के रूप में राजा राममोहन राय का अवतरण हुआ। ब्रिटिश शासक के विरूद्ध आवाज उठाने के लिए राजा राममोहन राय के समर्थन में कतिपय नेताओं का सहयोग मिला जिसमें बालगंगाधर तिलक एवं नेताजी सुभाषचन्द्र बोस का भी योगदान अविस्मरणीय रहा है।

आर्य, लेफ्टिनेंट मानवती (2007) ने अपनी पुस्तक में उद्धृत किया है कि 10 फरवरी 1937 को गृहमंत्रालय द्वारा बंगाल सरकार को एक वारंट भेजा गया जिसमें कहा गया था कि सुभाषचन्द्र बोस की गिरफ्तारी न्यायोचित नहीं है उसे बिना शर्त का छोड़ दिया जाय। जिसके उपरान्त 17 मार्च 1937 को सुभाषचन्द्र बोस को जेल से रिहा किया गया और बोस पुनः भारतीय राजनीति में सक्रिय हो उठे।

बोस, सुजाता (2011) ने अपनी पुस्तक में उद्धृत की है कि सुभाषचन्द्र बोस के द्वारा बियाना में ऑस्ट्रियन–इण्डियन सोसायटी का गठन किया गया और रूस एवं जापान के विरूद्ध चल रहे युद्ध में साकारात्मक भूमिका निभाने की योजना बनाई।

अध्ययन का उद्देश्य :

राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में आजाद हिन्द फौज की भूमिका के अध्ययन का उद्देश्य निम्नलिखित तथ्यों पर आधारित है :–

- इस अध्ययन के आधार पर राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में आजाद हिन्द फौज की भूमिका का तथ्यपरक विश्लेषण किया गया है।

- वर्तमान अध्ययन के आधार पर आजाद हिन्द फौज की भूमिका क्रियाकलापों का तथ्य परक अन्वेषन किया गया है।

अध्ययन पद्धति :

यह शोध आलेख मुख्य रूप से वर्णन एवं विश्लेषणात्मक एवं ऐतिहासिक आलोचनात्मक अध्ययन पद्धति पर आधारित है। वर्तमान अध्ययन राष्ट्रीय स्वतंत्रता आंदोलन में आजाद हिन्द फौज की भूमिका के विविध पक्षों के अन्वेषण से संबंधित है अतः यह शोध आलेख मुख्य रूप से द्वैतियक स्रोत पर आधारित है। इस अध्ययन के लिए मूल अध्ययन स्रोत पत्र–पत्रिकाओं एवं दस्तावेज तथा विभिन्न आचार्यों द्वारा सम्पादित पुस्तकों द्वारा लिया है।

सुभाषचन्द्र बोस का विदेशी प्रवास :

द्वितीय विश्व युद्ध के समय 17 जनवरी 1941 की पूर्व बेला में अपने कलकत्ता स्थित घर से नाटकीय ढंग से पलायन एवं दस सप्ताह पश्चात् जर्मनी आगमन सुभाष चंद्र बोस के जीवन की अनेक घटनाओं में से एक महत्वपूर्ण घटना है। अंग्रेज शासकों को आमरण अनशन का भय दिखाकर उन्होंने दिसंबर 1940 में कारागार से मुक्ति पाई। तत्पश्चातएलगिन रोड स्थित घर के एक कमरे में कुछ सप्ताह एकांत वास किया और मिलने वाले व्यक्तियों से भेंट करना वर्जित कर दिया। इस अवधि में उन्होंने अपनी दाढ़ी पर्याप्त बढ़ा ली। अब बढ़ी हुई दाढ़ी में और बिना चश्मा पहने उन्हें कोई पहचान नहीं सकता था।

अंग्रेज शासकों को गुप्तचर विभाग बहुत सतर्कता से, यहाँ तक कि उनके घर के आस–पास पेड़ों पर चढ़कर रात–दिन उनकी निगरानी कर रहा था। उन सबकी आँखों में धूल झोंक कर मौलवी की वेशभूषा में सुभाष एक कार में बैठकर रात्रि के अंधकार में घर से बाहर निकल गये। उनका भतीजा शिशिर कुमार बोस कार चलाकर उन्हें कलकत्ता से दो सौ मील दूर स्थितगोमोह रेलवे स्टेशन ले गया। गोमोह उन्हें इस कारण जाना पड़ा क्योंकि कलकत्ता के आस–पास स्थित अन्य स्टेशनों पर गुप्तचरों

द्वारा बड़ी सतर्कता से उनकी निगरानी की जा रही थी। गोमोह में उन्होंने पेशावर के लिए गाड़ी पकड़ी और यात्रा के दौरान अपने आपको किसी कार्यवश पेशावर जाने वाला एक बीमा एजेंट बताया। सुभाष और उनका एकमात्र हिन्दू साथी अफ़गानिस्तान और भारत के मध्य स्थित जनजातियों के क्षेत्र को पार करते हुए पेशावार से काबुल पठान की वेशभूषा में पहुंचे। इस सीमा क्षेत्र में पासपोर्ट और चुंगी आदि अवरोधों से बचने के लिए उन्हें टेढ़े–मेढ़े रास्तों पर चलने में बहुत–सी कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इन सब कठिनाइयों को सहन करते हुए अफ़गानिस्तान की शीत ऋतु में संख्या समय, जबकि तापमान हिमांक पर था, वे बहुत थके हुए काबुल जा पहुंचे।

काबुल प्रवास के समय उनके साथी ने उन्हें अपना मूक और बधिर भाई जिसे वह तीर्थ–यात्रा पर ले जा रहा था बताया। वहां उन्होंने अपने प्रवास के अंतिम दिनोंमें पठानों की वेशभूषा अपनाई जिससे कि बाजार में वहां के नागरिकों का ध्यान उनकी ओर आकृष्ट न हो और उन्हें कोई पहचान न सके। दो मास की अनिर्वचनीय कठिनाइयों, गोपनीयता, चिंता, शारीरिक कष्ट और मानसिक क्लेश के पश्चात् वे 1941 की अप्रैल के प्रारंभ में मास्को होते हुए सुरक्षित बर्लिन पहुंचे।

सुभाष चंद्र बोस का भारत से यह रोमांचकारी निर्गमन योजनाबद्ध था। इसे भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में एक महत्वपूर्ण मोड़ कहा जा सकता है। उनका यह दृढ़ विश्वास था कि अन्य देशों की सशस्त्र सहायता बिना भारत भूमि से अंग्रेजी शासन नहीं हटाया जा सकता। यही उनकी सुनिश्चित कूटनीति थी। इस कूटनीति के अनुकूल उन्होंने भारत को स्वतंत्र कराने की योजना अपने अंतः मन में बनाई। सामयिक अंतर्राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुसार उन्होंने अपनी योजना में परिवर्तन किये परंतु उनकी मूल नीति अपरिवर्तित रही। वे रूस से ही कार्य आरंभ करना चाहते थे परंतु व्यावहारिक होने के नाते उन्होंने अपना कार्य जर्मनी से ही आरंभ करके संतोष किया। उन्होंने बर्लिन में आज़ाद हिंद केन्द्र की स्थापना की और जर्मनी भूमि पर आज़ाद हिंद फौज आयोजित की। उनका यह कार्य उनकी पूर्व एशिया में भावी महान उपलब्धियों का पूर्वाभ्यास था। 1943 में जर्मनी से पनडुब्बी द्वारा 90 दिन तीव्र समुद्री यात्रा करके वे जापान पहुंचे। जापान सरकार द्वारा उन्हें सब प्रकार की सहायता का पूर्ण आश्वासन प्राप्त हुआ। उन्होंने पूर्व एशिया में भारत के स्वतंत्रता आंदोलन का नेतृत्व ग्रहण किया तथा आज़ाद हिंद फौज की बागडोर सम्भाली और भारत–बर्मा के पार मुक्ति सेना की अगुवाई की। आज़ाद हिंद फौज (आई.एन.ए.) ने 18 मार्च 1944 को सीमा पार करके मीनापुर में मोरांग स्थान पर 14 अप्रैल को तिरंगा फहराया। तत्पश्चात बर्मा में भारी वर्षा के कारण आज़ाद हिन्द फ़ौज के कार्य क्षेत्र में भारी बाढ़ आ गई और इस कारण भारतीय सेना की साफलता विफलता में बदल गई। रसद मिलना बंद हो गई। ऐसी स्थिति में आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों ने प्रत्यावर्तन करना आरंभ किया। सैनिकों में मलेरिया और पेचिश का रोग फैल गया। शत्रु सेना आज़ाद हिन्द फ़ौज की पंक्ति को पार करके रंगून की ओर बढ़ने लगी। अप्रैल 1945 में नेताजी रंगून से सिंगापुर चले गये। अगस्त मास में जब युद्ध समाप्ति की घोषणा हुई तब वे सिंगापुर से सैगोन पहुंचे। और वहां अपनी अंतिम यात्रा के लिए एक लड़ाकू विमान में सवार हुए। पूर्व एशिया में आज़ाद हिन्द फ़ौज के सैनिकों को अंग्रेज बंदी बनाकर भारत ले आये और उन पर लाल किले में ऐतिहासिक अभियोग चलाया। सिंगापुर छोड़ते समय 15 अगस्त 1945 को आज़ाद हिन्द फ़ौज के सुप्रीम कमांडर सुभाष चंद्र बोस ने अपने अंतिम दैनिक आदेश में सैनिकों से कहा, ''दिल्ली पहुंचने के अनेक रास्ते हैं और दिल्ली अभी भी हमारा अंतिम लक्ष्य है।'' उन्होंने इस विश्वास के साथ अपना आदेश समाप्त किया कि ''भारत आजाद होगा और जल्दी ही आज़ाद होगा।''

संसार के अन्य देशों को भारत की स्वतंत्रता के इस प्रश्न ने अपनी ओर आकर्षित किया। अमरीका तथा इंग्लैंड में भी भारतीयों की आशाओं के प्रति सहानुभूति प्रकट की गई। युद्ध के बाद अमरीका तथा इंग्लैंड में लोकमत इतना उग्र हो गया था कि इंग्लैंड को विवश होकर भारत छोड़ना पड़ा। इस आंदोलन का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में विशेष महत्व है। यद्यपि कई लोगों का कहना है कि ब्रिटेन द्वितीय महायुद्ध के बाद इतना शक्तिहीन हो गया था कि उसका भारत पर अधिक समय तक आधिपत्य बनाए रखना मुश्किल था। यह सही है कि ब्रिटिश सरकार द्वितीय महायुद्ध के बाद कमजोर हो गई थी परंतु भारतीय स्वतंत्रता भारत सरकार को ब्रिटिश सरकार की ओर से भेंट के रूप में नहीं मिली थी। यह स्वतंत्रता भारत के कड़े संघर्ष का ही परिणाम थी। यदि भारतीय जनता और नेता संघर्ष न करते तो वे कभी स्वतंत्रता हासिल न कर पाते। यदि ब्रिटेन द्वितीय महायुद्ध के बाद इतना कमजोर हो गया था कि उनका भारत पर और अधिक समय तक आधिपत्य बनाए रखना मुश्किल था और इसीलिए वह भारत छोड़ गया तो ब्रिटेन अन्य अफ्रीकी उपनिवेशों पर किस तरह आधिपत्य बनाए रख सका और उसने अफ्रीकी उपनिवेशों, जैसे केन्या, रोडेशिया, नाइजीरिया इत्यादि को स्वतंत्र क्यों नहीं किया ? इस प्रकार हम इस आंदोलन की महत्ता को भारतीय स्वतंत्रता के लिए कम करके नहीं आंक सकते। सभी नेताओं ने इस आंदोलन को भारतीय स्वतंत्रता के इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान दिया है। यह आंदोलन भारतीय स्वतंत्रता संग्रम के संघर्ष की अंतिम कड़ी थी और इस समय जो जनमत तैयार हुआ उसकी अभिव्यक्ति आजाद हिंद फौज के कैदियों की रिहाई और विद्रोह के आंदोलनों में भी मिलती है।

निष्कर्ष :

जुलाई, 1947 में ब्रिटिश पार्लियामेंट ने भारतीय स्वतंत्रता के संबंध में निर्णय दिया–''हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के नाम से भारत दो राष्ट्रों में परिवर्तित हुआ। 15 अगस्त, 1947 से दोनों राष्ट्र स्वतंत्र माने जायेंगे। 15 अगस्त को ही भारतीय शासन की सत्ता ब्रिटिश सरकार से पृथक होती है। उस दिन के बाद हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के सम्बन्ध में, ब्रिटिश पार्लियामेंट को कानून पास करने का अधिकार नहीं रहेगा। दोनों राष्ट्रों के अलग–अलग स्वतंत्र रूप से अस्तित्व होंगे।'' उपरोक्त निर्णय के अनुसार 15 अगस्त, 1947 को भारतीय स्वतंत्रता की घोषणा की गई। ब्रिटेन का संयोजित लार्ड माउंट बेटन का प्रस्तावित मुस्लिम लीग तथा कांग्रेस की स्वीकृति पर भारत का विभाजन पाकिस्तान और हिन्दुस्तान के नाम से घोषित किया गया। ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन की सत्ता दोनों पार्टियों के नेताओं को संभलवा दी। 15 अगस्त हमारे देश के नेताओं, क्रांतिकारियों की निर्भीकता, कर्त्तव्यपरायणता और अजेयता की प्रतिष्ठा का दिन है और देशवासियों के लिए गौरव का दिन है। यही दिन उन यशस्वी वीरों और अमर शहीदों को श्रद्धांजलि समर्पण करने का पर्व है जिनके त्याग, बलिदानों और मृत्युओं से भारत ने विदेशी सत्ता से मुक्ति पाई।

संदर्भ स्रोत :

I. Venkatesan, G. (2006), History of Indian Freedom, V C Publications, Rajapalayam, p. 92 -108.

II. Arya, Lt. Manwati (2007) : Patriot The Unique Indian Leader Netaji Subhas Chandra Bose, Lotus Press, New Delhi, p.68-70

III. Chandra, Bipin; Tripathi, Amles and De, Barun (2007) Freedom Struggle, 10th ed. National Book Trust, New Delhi, p. 49.

IV. Bose, Sugata (2011) : His Majesty's Opponent: Subhas Chandra Bose and India's struggle against empire, Penguin Books India Pvt. Ltd, New Delhi, p. 90-91.